विदेशी विश्वविद्यालय कानून : उच्चशिक्षा थैलीशाहों के कब्जे में देने की कवायद

विश्वविद्यालयों की भूमिका के बार में जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि ''विश्वविद्यालय मानवता, सहिष्णुता, तर्कशीलता विचारों का साहस और सत्य की खोज में खड़ा होता है। यह सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति की दिशामें मानव जाति की प्रगति-यात्रा के साथ होता है। यदि विश्वविद्याल अपने दायित्वों का भली-भांति पालन करें तो यह राष्ट्र और जनता के लिए बहुत ही अच्छा होगा।'' लेकिन देश के मौजूदा शासक 50 साल बाद ही इन आदर्शों की धज्जी उड़ाते हुए शिक्षा को मुनाफे के संसाधन में तब्दील कर चुके हैं। मानवता,सहिष्णुता, तर्कशीलता, विचारों का साहस और सत्य की खोज, राष्ट्र की भलाई अब बीते जमाने की बातें हैं।

आज उच्च शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, कार्य प्रणाली और सम्पूर्ण ढांचे को देशी-विदेशी पूंजी के स्वार्थों के अनुरूप ढाला ला रहा है। शिक्षा क्षेत्र में मुनाफे के रास्ते टटोलते हुए सरकार अब विदेशी विश्वविद्यालयों के लिये नये-नये रास्ते तलाश रही है। विदेशी विश्वविद्यालय (प्रवेश और संचालन नियमन) विधेयक 2010 से की संसद में अटका पड़ा है, इसीलिए अब उनके आने के लिए चोर दरवरजे खोलने की तैयारी जोरों पर है। भारत-अमरीका ज्ञान पहल के नाम से कुए समझौते के तहत संयुक्त शोध और ज्ञान साझेदारी के नाम पर पिछले दरवाजे से विदेशी विश्वविद्यालयों को देश में घुसने की इजाजत दी जा रही है। मानव संसाधन विकास मंत्री कपिल सिब्बल विदेशी विश्वविद्यालयों के प्रवेश को लेकर ज्यादा व्यग्र हैं। उनका कहना है कि ''विदेशी विश्वविद्यालयों का अपना संचार क्रांति से भी बड़ी क्रांति होगी।''

संसद में विरोध के चलते अधर में लटके विधेयक से व्यथित और विदेशी विश्वविद्यालयों के आगमन को लेकर व्याकुल कपिल सिब्बल ने यूजीसी मौजूदा कानून के दायरे में ही उन संभावनाओं को तलाशने को कहा है, जिनके जरिये विदेशी विश्वविद्यालयों को प्रवेश की इजाजत दी जा सके।

इसके दो संभावित रास्ते हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग कानून 1956 के अनुच्छेद 3 के तहत 'डीम्ड विश्वविद्यालय' के नाम पर या राज्यों के कानून के अंतर्गत निजी विश्वविद्यालय के रूप में। यह रास्ता पहले आजमाया भी गया है। 'डीम्ड विश्वविद्यालय' की संकल्पना आजादी के तत्काल बाद गठित राधा कृष्णन आयोग ने प्रस्तुत की थी जिसे 1956 में यूजीसी नक अपनी नियमावली में शामिल कर लिया, यूजीसी के इस नियम के अनुसार'' ऐसे संस्थान जो एतिहासिक कारणों से या अन्य परिस्थितिवश विश्वविद्यालय नहीं हैं, लेकिन वह किसी भी विश्वविद्यालय के समान उच्च स्तर पर विशिष्ट शैक्षणिक कार्य कर रहे हैं'' तो उसे 'डीम्ड टू बी युनिवर्सिटी' (विश्वविद्यालय जैसा मान्य) दर्जा दिया जा सकता है।

हालांकि पहले इस श्रेणी में शामिल करने के लिए संस्थानों को बहुत ऊंचे मानदंडों पर कसा जाता था। 1958में केवल इन्डियन इंस्टिट्यूट आफ साईंस और इन्डियन एग्रीकल्चर रिसर्च इंस्टीट्यूट ही इन मापदंडों पर खड़े उतरते थे 1967 तक टाटा इंस्टिट्यूट आफ साईंस-धनबाद, बिड़ला इंस्टिट्यूट ऑफ तकनोलॉजी-पिलानी, इन्डियन इंस्टिट्यूट ऑफ माईन्स-धनबाद, आदि को डीम्स विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया। इसके अलावा आईआईटी, आईआईएम, एम्स जैसे संस्थानों को भी इसमें शामिल किया गया था। लेकिन आज सुभारती, शारदा, लवली प्रोफेशनल, एमिटी जैसे कुकरमुत्ते की तरह उग आये लगभग 150 से ज्यादा ऐसे प्राइवेट संस्थानों को इसमें शामिल कर लिया गया है, जो पहले गिनाये गये नामों के आगे कहीं नहीं ठहरते। आईआईटी, आईआईएम, और एम्स जैसे संस्थानों में दाखिला पाना हर क्षात्र का सपना होता है, लेकिन सरकार की क्षात्र-विरोधी नीतियों के चलते इन संस्थानों का दायरा सीमित किया जा रहा। मजबूरन क्षात्रों की सुभारती शारदा, लवली, एमिटी जैसे निजी संस्थानों में प्रवेश लेना पड़ता है, जिन्हें विश्वविद्यालय के बजाय शिक्षा का माल कहना ज्यादा उचित होगा। ऊंची फीस वसूल कर इन संस्थानों के मालिक मालामाल होते जा रहे हैं जबकि इनमें पढ़ने वाले छात्र एवं उनके अभिभावक फीस चुकाने के लिये बैंक से लिये गये कर्ज के बोझ तले दबते जा रहे हैं। पढ़ाई पूरी होने पर नौकरी की कोई गारंटी नहीं लेकिन उनके सर पर मोटे कर्ज और ब्याज की गठरी होगी इसकी पूरी गारंटी है।

देश में उच्च शिक्षा की हालत किसी से छिपी नहीं है, एक अनुमान के मुताबिक 12 वीं पास करने वालों कुल छात्रों में से केवल बारह फीसदी छात्र ही उच्च शिक्षा ग्रहण कर पातें हैं। यूनोस्को की विश्व शिक्षा रिपोर्ट 2000 के अनुसार हमारे देश में 13 से 23 वर्ष आयु के मात्र 6.9 प्रतिशत नौजवान ही उच्च शिक्षा प्राप्त कर पाते हैं। जहां तक विश्वविद्यालयों की संख्या का सवाल है तो दक्षिण कोरिया के 4.5 करोड़ पर 120 विश्वविद्यालय के स्तर पर पहुंचने के लिए हमें 2300 (लगभग नौ गुने) विश्वविद्यालय खोलने होंगे। उच्च शिक्षा में सुधार के लिये इतनी परेशान दिखने वाली सरकार शिक्षा के बजट में लगातार कटौती करती जा रही है जो सकल घरेलू उत्पाद के चार फीसदी से घटकर तीन फीसदी रह गया है। अभी हाल ही में वित्त मंत्री प्रणब मुखर्जी ने यह एलान किया कि सार्वजनिक खर्च में कटौती के लिये जनता तैयार रहे। आजादी के बाद से ही सरकार के लिये शिक्षा सबसे ज्यादा क्षेत्र रहा है। जाहिर है कि इस नयी कटौती की गाज भी उसी पर गिरेगी।

विदेशी विश्वविद्यालयों को न्योता देना शिक्षा के निजीकरण-बाजारीकरण की दिशा में ही उठाया गया एक कदम है शिक्षा में 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को मंजूरी देने के बाद से देश में विदेशी शिक्षण संस्थानों की संख्या में 4.5 गुने की वृद्धि हुई है। सन- 2000 में जहां देश में कुल 144 विदेशी शिक्षण संस्थान थे, वहीं 2010 तक इनकी संख्या 631 हो गयी। सरकार का तर्क है कि विदेशी विश्वविद्यालयों के आने से प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी और इससे शिक्षा के क्षेत्र में सुधार होगा, जबकि हालत तो यह है कि भारतिय विश्वविद्यालयों के साथ कई पाठ्यक्रमों में साझेदारी करनेवाले करीब 150 विश्वविद्यालयों में से 104 विश्वविद्यालयों को यूजीसी ने फर्जी विश्वविद्यालय की सूची में रखा है और 44 विश्वविद्यालयों को उन्हीं के देश में मान्यता प्राप्त नहीं है। भला ऐसे धंधेबाज और फर्जी विश्वविद्यालयों से किस प्रतिस्पर्धा और शिक्षा के स्तर में कैसे सुधार का सामना दिखाया जा रहा है। खुद अपने ही देश के छात्रों को पढ़ने की फिस चुकाने के लिये शुक्राणु बेचने और देह व्यापार में धकेलने वाले ये विदेशी विश्वविद्यालय किस सदाशयता से हमारे देश की शिक्षा का स्तर सुधारेंगे।

कितनी हास्यास्पद बात है कि विदेशी विश्वविद्यालय विधेयक संसद ने मंजूर नहीं किया और यूजीसी यह तय करने में व्यस्त है कि देश में इन विदेशी शिक्षा की दुकानों का प्रवेश कैसे सम्भव हो। यूजीसी के मुताबिक उन्हीं विदेशी संस्थानों को प्रवेश की इजाजत दी जायेगी जो टाईम्स हायर एज्यूकेशन वर्ल्ड यूनिवर्सिटी रैंकिंग या शंघाई जिआओतोंग रैंकिंग में शीर्ष 500 संस्थाओं की सूची में शामिल होंगे। साथ ही वही भारतीय संस्थान इन विदेशी विश्वविद्यालयों के साथ साझेदारी कर सकते हैं जिन्हें नेशनल एसेसमेंट एंड एक्रेडीशन काउन्सिल या नेशनल बोर्ड ऑफ एक्रेडीशन की तरफ से सबसे ज्यादा अंक प्राप्त होंगे। हर बात पर संसद की सर्वोच्चता और पवित्रता की दुहाई देने वाली सरकारें अभी तय नहीं कर पायीं है कि विदेशी विश्वविद्यालयों को प्रवेश किया जाये या नहीं लेकिन किस तरह उन्हें प्रवेश की इजाजत होगी इसके नियम तैयार कर लिये गये हैं।

मंशा एक दम साफ है। सरकार एन-केन-प्रकारेण और शीघ्रताशीघ्र देशी-विदेशी विश्वविद्यालयों को भारत में धंधा शुरू करने की इजाजत देना चाहती है। इसके लिये चाहे उसे देश के संविधान को ही ताक पर क्यों न रखना पड़े।

देश के महान दार्शनिक और शिक्षाविद रविन्द्र नाथ टैगोर चाहते थे कि विश्वविद्यालय अपनी कार्रवाई का विस्तार करें और भारत के पिछड़े गांव तक में अनौपचारिक शिक्षा का प्रचार करें। इसके लिये देशी भाषाओं में उपयोगी पुस्तिकाओं, पर्चों को लिखें व उनका प्रकाशन करें। उच्च शिक्षा से अपना हाथ पीछे खींच चुके हमारे शासकों से भी अब यह उम्मीद करना बेकार है, विदेशी विश्वविद्यालय तो भला ऐसे काम करने से रहे। वे तो पाठ्यक्रम भी बाजार की मांग के अनुरूप ही चलाएंगे। विदेशी विश्व विद्यालयों का आना विकाश नहीं सर्वनाश है । अपनी चमक दमक के दम पर महंगे दामों में घटिया शिक्षा देकर भरपूर मुनाफा बटोरना ही विदेशी विश्वविद्यालयों का लक्ष्य है जिसके चलते पहले दिन से ही क्षात्र को बैंक का कर्जदाता बना दिया जायेगा जल्दी ही भारतीय क्षात्र भी अमरीकी छात्रों की तरह कर्ज के बोझ से दबे हुए जीवन की शुरुआत करेंगें। फिर तो मुनाफे के भूखे भेड़िये उन्हें जैसे चाहे अपने इशारे पर नचा सकेंगे। उनका न कोई आदर्श होगा और न ही कोई नैतिक साहस, न सामाजिकता न देश की जनता से कोई प्यार।

ये विश्वविद्यालय सांस लेने वाले और बोलने वाले रोबोट तैयार करेंगे। ऐसे में तमाम आजादी पसंद छात्रों-अभिभवकों का यह कर्त्तव्य बनता है कि इसके विरोध में आगे आयें।

घरेलू कामों का जिम्मा महिलाओं पर क्यों ?

एक आदर्श गृहणी का विचार भारतीय परिवेश में व्याप्त मिथक को जन्म देता है। यह मिथक महिलाओं को गृहलक्ष्मी, अन्नपूर्णा आदि की अपाधियां देकर न केवल महिलाओं के भीतर इस भ्रमक विचार को पैदा कर उनकी आजादी को प्रतिबंधित करता है बल्कि जो महिलायें अपनी जिंदगी स्वयं जीना चाहती है और समाज में संघर्ष कर रही है, उन्हें कुंठित करते हुए उनकी पहलकदमी को रोकता भी है।

इनमें से कुछ आम प्रचलित मिथक ये भी हैं-

1. कुछ घरेलू काम जरूरी है, जिनके बिना दुनिया का चलन रुक सकता है।
2. उन कामों को बेहतरीन ढंग से करना भी उतना ही जरूरी है।
3. उन कामों को वे खुद अपने बेहतरीन ढंग से करे। यह भी उतना ही जरूरी है।
4. वे काम सिर्फ वे ही कर सकती हैं दूसरा कोई नहीं
5. चाहे कुछ भी हो, वे काम वे खुद ही करेंगी वरना घर के लोग नाराज हो जायेंगे।

वे कुछ जरूरी काम जिन्हें बेहतरीन ढंग से केवल घर की महिला ही कर सकती है। जिसके न होने पर समाज रुक जायेगा घर के बाकी सदस्य नाराज हो जायेंगे क्या है?

ये हैं! घर की सफाई, साज-सज्जा झाड़ू पौंछा, बर्तन मांजना, कपड़े धोना, खाना बनाना, बच्चों की टॉयलेट साफ करना, दुध पिलाना आदि-आदि। वास्तव में क्या ये इतने जरूरी काम हैं जिन्हें घर की महिला न करे तो सब कुछ बर्बाद हो जायेगा?

ये सारे गृह कार्य करने का कार्यभार महिलाओं के कंधों पर डालने का विचार कितना झूठा है इसको हम दो नजरियों से देख सकते हैं। पहला-देश की शासक वर्गीय एक तिहाई महिलायें उपरोक्त सभी जरूरी गृह कार्य स्वयं नहीं करती। उनके घर पर सफाई, कपड़े धुलाई, बच्चों की देखभाल, खाना पकाने घर की चौकीदारी आदि समस्त कार्यों के लिए महिला पुरुष दोनों तरह के कर्मचारी लगे होते हैं। फिर भी उनका घर बेहतर तरीके से चलता है। और वे अपनी जिंदगी भी शान से जीती है। समाज में शासकीय भूमिका भी बखूबी निभाती है। चाहे वे राजनेता हों या प्रबंधक सोनिया गांधी, इदिरा नुई, मायावती या फिल्मी हस्तियां उन्हें अपने गृह कार्य के लिए ज्यादा समय घर पर नहीं रहना होता।

दूसरा-सर्वहारा वर्ग की महिलायें, वे सभी श्रमिक महिलायें जिन्हें अपनी जिन्दगी की निजी जरूरतों को पूरा करने के लिए घर से बाहर जाकर 10-12 घंटे मज़दूरी करनी पड़ती है। ऐसे में घर को उन्हें छोड़ना पड़ता है। घर का काम उन्हें बाकी बचे समय में करना पडता है या फिर पति या घर के अन्य बुजुर्ग सदस्य उसमें मदद करते हैं। रोजी-रोटी का संकट उन्हें एक तरह से घरेलू दासता से 'मुक्ति' दिलाता है।

दूसरा-सर्वहारा वर्ग की महिलायें, वे सभी श्रमिक महिलायें जिन्हें अपनी जिन्दगी की निजी जरूरतों को पूरा करने के लिए घर से बाहर जाकर 10-12 घंटे मज़दूरी करनी पड़ती है। ऐसे में घर का काम उन्हें बाकी बचे समय में करना पडता है या फिर पति या घर के अन्य बुजुर्ग सदस्य उसमें मदद करते हैं। रोजी-रोटी का संकट उन्हें एक तरह से घरेलू दासता से 'मुक्ति' दिलाता है। आम मध्यमवर्गीय व अन्य निम्न मध्यम वर्गीय महिलाओं के लिए ये घरेलू कार्य सर्वोपरि बन जाने के साथ-साथ घर की चारदीवारी उनके लिए जिन्दगी भर का कैदखाना बन जाती है। घर खर्च के लिय उन्हें बाहर नहीं जाना पड़ता तथा आमदनी का स्तर उन्हें अलग से कुछ करने नहीं देता।

आम मध्यमवर्गीय व अन्य निम्न मध्यम वर्गीय महिलाओं के लिए ये घरेलू कार्य सर्वोपरि बन जाने के साथ-साथ घर की चारदीवारी उनके लिए जिन्दगी भर का कैदखाना बन जाती है। घर खर्च के लिय उन्हें बाहर नहीं जाना पड़ता तथा आमदनी का स्तर उन्हें अलग से कुछ करने नहीं देता।

अत: घरेलू कार्यों का जिम्मा उनके कंधों पर आ जाता है और ये इतने सूक्ष्म रूप में मानसिक स्तर तक कायम हो जाता है कि उन्हें स्वयं यह लगने लगता है कि घर के ये जरूरी कार्य वे ही बेहतर तरीके से कर सकती है पति का बाहर काम करना और घर संभालना महिला की जिम्मेदारी। इस तरह जीवन के समस्त बेहतरीन क्षण वह घर के कैद में ही जीती है। उसमें चाहे कितनी ही योग्यता हो या पढ़ी-लिखी हो घर की चारदीवारी के भीतर जीना नियति बन जाती है और इस विचार को पालित-पोषित करने में शासक वर्गीय मीडिया प्रचार तंत्र भी भूमिका निभाता है। वह अपनी पत्रिकाये, विज्ञापनों, फिल्मों व धारावाहिकों के द्वारा खूब सजी-धजी गृहणियों को महिमा मंडित करता है। घर की जिम्मेदारी का एहसास कराने के लिए ही तीज-त्यौहारों को स्पेशल ब्रांडेड बना कर महिलाओं की अलग से जीवन जीने का लालसा को कुंठित करता है। इसका फायदा भी उसे दो तरह से मिलता है एक तो उसका उत्पाद बिक जाता है। दूसरी ओर घर की जिम्मेदारी का गहराई से एहसास कराकर एक बड़ी आबादी को चारदीवारी में रखने का विचार बना रहता है। अन्यथा महिलायें अपने लिए रोजगार व जीवनके संकट को हल करने के लिए मांग करने लगेगी जो उसके लिए दूरगामी तौर पर अहितकर साबित होगा।

अत: मुक्तिकामी महिलाओं को आदर्श गृहिणी के मिथक को समझना होगा व अपनी जिंदगी के बेहतर विकल्पों को चुनना होगा। उसे तय करना होगा कि उसके लिए क्या बेहद जरूरी है। इसी के अनूरूप उसे अपना मार्ग चुनना होगा। निश्चय ही यह मार्ग सर्वहारा वर्ग की मुक्ति के मार्ग से होकर गुजरेगा।